काव्याञ्जलि

विश्वकवि रवीन्द्र
की १२५वीं जयन्ती
के अवसर पर
प्रकाशित

काव्यांजलि

सम्पादक
छविनाथ मिश्र

सहयोग
वसुमति डागा

आवरण
मदन सूदन

प्रकाशक
स्वर समवेत
६ तनसुक लेन
कलकत्ता-७००००७

मूल्य
बीस रुपये

मुद्रक भागचन्द सुराना
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५, रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७००००७

KAVYANJALI
Poetic tribute to Tagore by some eminent Hindi poets
Edited By CHHAVI NATH MISHRA

रवीन्द्र-प्रसंग

●

कविता, मनुष्य के होते रहने या उसके न रहने की अन्तर्यात्रा की खिलावट का नाम है। सुगन्ध लिखने का शिल्प है और माननीय अस्तित्व अथवा इतिहास-बोध का आधारभूत यथार्थ है। यह यथार्थ, यह शिल्प जब आत्म-प्रकर्ष की साधना के साथ विश्व-प्रेम की भूमिका में खुलता है तब कवि-चेतना किसी विश्व-द्रष्टा और युगस्रष्टा कवि-मूर्ति का रूप ले लेती है। रवीन्द्रनाथ उसी कवि-चेतना की कवि मूर्ति एवं प्रबुद्ध पुरोधा थे। जहाँ लोकोत्तर चेतना एवं लोक-चेतना दोनों में समन्वय स्थापित करना ही काव्य चेतना की मुख्य शर्त हुआ करती है। मानवता-बोध की दिशा में इस शर्त को उजागर करना कविता की एक ज़रूरी भूमिका है। रवीन्द्रनाथ इसी भूमिका में भूमि और भूमा की क्रान्तप्रज्ञ प्रतिभा के कवि रहे हैं। वे हमारे सामने अपनी रचनाओं के माध्यम से एक नये जीवन दर्शन के प्रवक्ता के रूप में उभरते हैं और चेतना के स्तर पर नये भारत की पटभूमि में प्रबुद्ध एवं यथार्थ भारत की तलाश को दिशा देते हैं। उन्होंने जो भी लिखा, जितना भी लिखा, जैसा भी लिखा और साहित्य की जिस किसी विधा में लिखा—सब के मूल में मानवतावादी दृष्टि की समग्रता ही अत्यधिक मुखर है।

रवीन्द्रनाथ मूलत कवि थे। रस-पिपासु और रसस्रष्टा थे, किन्तु उनकी प्रातिभ शक्ति के आलोक में साहित्य के विविध पक्ष मानवीय सम्बन्धा एव सरोकारा की गहरी अर्थवत्ता क साथ उभरे है। बाह्य सौन्दर्य एव अन्त - सौन्दर्य की भूमिका में प्रकृति-सौन्दर्य, सौन्दर्य बोध तथा नारी चेतना को बिम्बो एव प्रतीको क माध्यम से जिस उज्ज्वल मानसिकता की भूमि पर उन्होने उकेरा है, उसे तीसरी आँख की रोशनी मे ही पढा समझा जा सकता है।

उन्होने अपने 'जीवन देवता' की आराधना एव साधना में जिन उदात्त जीवन-मूल्या को जिया और उन्हे सकर्मकता की भाषा दी उसके आलोक में उनके विचार सस्कार, काव्य-सवेदना एव कर्म-प्रवणता के पीछे एक लोकोत्तर या वृहत चेतना से जुडे परिवेश एव जन-मानस की रचना का आग्रह ही क्रिया-शील रहा। उनकी लोकोत्तरता जीवन से पलायन नहीं, न तथाकथित आध्यात्मिकता और न दार्शनिक आदर्शवाद जैसी थी बल्कि उनके जीवन का यही परम सत्य था। वही उनके रचना-ससार का वैचित्र्य था। जिसकी सहज दीप्ति उनकी कविता 'मुक्ति' में इस प्रकार उभरती है—

'असख्य बन्धन माझ महानन्दमय
लभिब मुक्तिर स्वाद। एइ वसुधार
मृत्तिकार पात्रखानि भरि वारम्बार
तोमार अमृत ढालि दिबे अविरत
नाना वर्णगन्धमय। प्रदीपेर मतो
समस्त ससार मोर लक्ष वर्तिकाय
ज्वालाए तुलिबे आलो तोमारि शिखाय
तोमार मन्दिर-माझ।"

उसी सुनिश्चितता विश्वकवि क १२५वें जन्म दिन पर 'कवि-प्रणाम' के रूप में प्रस्तुत काव्याजलि स्वर समवेत का एक लघु रचनात्मक प्रयास है। अपनी रचनाओ क द्वारा श्रद्धा प्रणाम स हिन्दी क जिन प्रतिष्ठित कवियों एव कव-यित्रियो ने इस प्रणाम जलि को समृद्ध किया है—उन्हें स्वर-समवेत की इस सार्थक भूमिका को साकार करने की दिशा में रचना सहयोग क लिये अन्त स्तल आभार।

छविनाथ मिश्र

श्रीनिवास शर्मा

रवीन्द्रनाथ की प्रासंगिकता

●

मानव-मूल्या क सदर्भ म साहित्य और स स्कृतिक विरासत का मूल्याकन कोइ नयी बात नहा। परपरा के सही आकलन क लिए उसका परीक्षण, उसकी प्रासंगिकता और मूल्याकन तथा पुनर्मूल्यांकन आवश्यक है। क्याकि मानव-जीवन के प्रतिमान अपने समय क राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों से गहरे रूप में सपृक्त होते हैं।

संस्कृति का अर्थ इतिहास के साथ बदलता रहा है। कृति और कृतिकार की प्रासंगिकता भी परिवर्तित हो रहे युग और समाज में नए प्रश्नों के साथ उपस्थित होती है। यही कारण है कि समाज द्वारा स्वीकृत जीवन-प्रतिमानों और अवधारणाओं की कसौटी पर साहित्य को परखने और उसे मूल्यांकित करने की आवश्यकता प्रत्येक युग में पड़ती है।

रवीन्द्रनाथ ने महामानव के सागरतट पर बैठकर जिस साहित्य की सर्जना की वह अपने आप में सागर का विस्तार और गहराइ लिए हुए है। उसका अवगाहन और मूल्यांकन सहज नहा।

महाभारत काल से ही इस देश म यह धारणा—बद्धमूल रही है कि भारत प्राकृतिक दृष्टि से ही नहा, सांस्कृतिक दृष्टि से भी एक इकाई है। भारतीय मनीषा ने सभ्यता के प्रारम्भिक काल म ही भौगोलिक और सांस्कृतिक एकता का स्वप्न देखा और अपनी रचनाओं म उसे मूर्त रूप दिया। देश की एकता, अखंडता, मानवीय प्रेम राष्ट्रीय स्वाधीनता और विश्व बंधुत्व की भावना के अमर गायक कवि गुरु रवीन्द्रनाथ भारतीय संस्कृति की अन्यतम धरोहर हैं।

उन्नीसवी शती के बंगाल म मनीषा का जो प्रबल आवेग उठा था—रवीन्द्रनाथ उस सांस्कृतिक नवजागरण के अग्रदूत बनकर उपस्थित हुए। उनका साहित्य भारत की सांस्कृतिक विरासत और जातीय चेतना के नए आयाम उद्घाटित करता है।

भारत की जिस नयी राष्ट्रीयता और नयी संस्कृति का स्वप्न उन्होंने देखा था—वह महाकवि के व्यापक युग चिन्तन और आधुनिक दृष्टि-कोण का परिचायक है। उनका साहित्य नवीन युग चेतना, मानव मुक्ति, स्वाधीनता और मानव प्रेम का सन्देश देता है। महाकवि कालिदास की भाँति रवीन्द्रनाथ भी प्रेम, सौन्दर्य और मानवीय एकता के कवि ह। भारत और विशेषकर बंगाल की जनता ने उनकी रचनाओं में देश प्रेम स्वाधीनता और मानव मुक्ति का सन्देश प्राप्त किया। उनकी प्रासंगिकता केवल इस बात म नहा है कि व

प्रेम, सौन्दर्य और मानवीय एकता क कवि हैं बल्कि इस बात में है कि उनका साहित्य भारतीय जनता की साम्राज्यवाद विरोधी चेतना और उसके मुक्तिकामी सघर्ष का दर्पण है।

रवीन्द्रनाथ का आध्यात्मिक चिन्तन मनुष्य के भौतिक और सामूहिक कल्याण की चिन्ता से युक्त है। देश प्रेम, स्वाधीनता, साम्राज्यवाद विरोधी चेतना, मानवीय एकता और विश्व बधुत्व की भावना की वह प्रखर अभिव्यक्ति जो उनके साहित्य में देखने को मिलती है—अन्यत्र दुर्लभ है। उनका साहित्य भारतीय संस्कृति की सामासिक चेतना, उसकी मूलभूत एकता को अपनी विविधता के साथ विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त करता है।

रवीन्द्रनाथ तीन संस्कृतियो के मिलन-विन्दु पर खडे थे—प्राचीन भारतीय सस्कृति, इस्लामी सस्कृति और युरोपीय सस्कृति। तीन सस्कृतियो के मिलन से भारत में जो नयी संस्कृति विकसित हो रही थी—महाकवि टैगौर उस नयी और अनोखी सस्कृति को अपना रहे थे। प्राचीन और नवीन का सम्मिश्रण और समावेश कवि गुरु के साहित्य का निजी वैशिष्ट्य है।

बॉलजाक की तरह रवीन्द्रनाथ भी आभिजात्य वर्ग के थे। उन्होंने दुनिया को आभिजात्य वर्ग के चश्मे से ही देखा है। बॉलज़ाक ने आभिजात्य जीवन के खोखलेपन, पतनोन्मुख सामन्ती समाज उसके क्षय ग्रस्त जीवन मूल्य और अन्तर्विरोधा का जैसा धारदार चित्रण किया है—रवीन्द्रनाथ ने वैसा नही किया। परन्तु बाद की रचनाओं में मध्यवित्तीय मनोवृत्ति को अतिक्रम करने का प्रयास अवश्य देखने को मिलता है। उनका अन्तिम उपन्यास "योगायोग" इस सदर्भ में उल्लेखनीय है। "योगायोग" में बर्गीय आभिजात्य के सामाजिक जीवन का अत चित्र उपस्थित किया गया है। यह उपन्यास *बगाल के विलुप्त हो रहे सामतीय शक्तियां और उदीयमान वणिक वर्ग क सद्य* सम्पन्न उद्धत अहकार और परपरागत नैतिकता के प्रश्नो को उकेरता है। चरित्र-चित्रण के सूक्ष्म कौशल और युगीन जीवन चेतना के नए यथार्थ की विशुद्ध अभिव्यक्ति के कारण यह उपन्यास भारतीय साहित्य की एक अनुपम उपलब्धि है।

रवीन्द्र काव्य की शक्ति और आत्मविश्वास का मूल जीवन प्रवाह की अवि

विच्छिन्नता में है। देश से विराग और विदेश से अनुराग की जगह उनका साहित्य विदेश से विराग और देश से अनुराग का सन्देश देता है। रवीन्द्रनाथ स्वप्न-विलासी कलाकार नहीं—जीवन वास्तव के गहरे सरोकारों वाले कवि हैं। देश के समग्र जीवन से एकात्मकता और गहरी आत्मीयता रवीन्द्र-काव्य की प्राणशक्ति का उत्स है।

अंग्रेजों के प्रति उनमें आशैशव श्रद्धा थी परन्तु अंगरेजी शासन और अंगरेजी साम्राज्यवाद का उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया। जब कभी ब्रिटिश शासन की बर्बरता का समाचार मिलता—कवि की वाणी हुंकार उठती। हुंकार की यह आवाज़ बिजली की तरह देश भर में फैल जाती। विदेशी शासन और उसके दारुण कुकृत्यों की जो प्रतिक्रिया होती है और उसका विरोध जो रूप लेता है उसकी एक झलक उनके उस पत्र में देखी जा सकती है जो उन्होंने सन् १९२० में सी० एफ० एण्ड्रूज को लिखा था—'स्वदेशी और स्वराज आम तौर पर हमारे देशवासियों के मन में तीव्र उत्तेजना पैदा करते हैं, क्योंकि उनपर पूरी तरह हावी रोष के आवेग का कुछ उत्ताप वे अपने में लिए होते हैं। इस ताप और आन्दोलन से मैं अछूता हूँ, यह नहीं कहा जा सकता। पर जैसे भी हो, अपने कवि स्वभाव के कारण मैं इन उद्देश्यों को अन्तिम मानने में असमर्थ हूँ। ये हमसे अपने हक़ से बहुत अधिक का दावा करते हैं। एक खास बिन्दु पर पहुँचने के बाद मुझे लगता है कि अपने ही लोगों से जिनके साथ मैं काम करता रहा हूँ—अलग होने को मैं बाध्य हूँ।' इस शताब्दी के पहले दशक के अन्तिम वर्षों में राजनीतिक आन्दोलनों से नाता तोड़ लेने के बावजूद राजनीतिक हलचलों से वे अपने को अलग नहीं कर सके थे। जलियाँवाला बाग के भीषण नरसंहार ने कवि को मर्माहत कर दिया। उन्होंने अपना मौन तोड़ा और विरोध प्रदर्शित किया। सम्राट द्वारा सन् १९१५ में प्राप्त "सर" की उपाधि को लौटाने का निश्चय करते हुए उन्होंने वायसराय को लिखा था—'अब वह समय आ गया है जब सम्मान के बिल्ले, अपमान और हेतु के बेढंगे संदर्भ में, हमारी लज्जा को और उजागर करते हैं। जहाँ तक मेरा संबंध है, मैं सभी विशिष्ट प्रतिष्ठा-चिह्नों का त्याग करके उन

देशवासियो की कतार में खडा होना चाहता हूँ जिन्हें अपनी तथाकथित नगण्यता के कारण अमानवीय तिरस्कार भोगना पडता है"।

हिटलर के नेतृत्व में फासिज्म क प्रचार का उन्होंने तीव्र विरोध किया। जापानी फासिस्ट कवि नागूची की उन्होने भर्त्सना की।

रूस की यात्रा ने उनके दृष्टिकोण म व्यापक परिवर्तन उपस्थित किया। रूम में महाकवि ने जिस समतामूलक और शोषणहीन समाजवादी समाज को देखा उससे प्रभावित हुए विना वे नहा रह सके। सन् ३० के आस पास प्रकाशित 'रूस की चिट्ठी' इसका प्रमाण है। कुछ लोगो क मतानुसार सन् तीस क वाद के रवीन्द्रनाथ प्रगतिशील लेखक हैं। जो उन्ह बुर्जुआ और आभिजात्य वर्ग का लेखक मानते हैं व भी उनके साहित्य की प्रगतिशील भूमिका मे इनकार नही करते।

सन् १९३८ में कलकत्ता में प्रगतिशील लेखक सघ का अधिवेशन सम्पन्न हुआ। रवीन्द्रनाथ इसकी अध्यक्षता करने वाले थे। अवस्थता के कारण उन्हाने अपना लिखित सन्देश भेजा। उनका यह सन्देश उनके प्रगतिशील और जनवादी दृष्टिकोण तथा साहित्य और सस्कृति सबधी उनकी विचारधारा का ऐतिहासिक दस्तावेज है। 'जनता स अलग रहकर हम बिलकुल अजनबी बन जायेंगे। साहित्यकारो को मनुष्यो मे मिलजुल कर उन्ह पहचानना है। मेरी तरह एकातवासी रहकर उनका काम नहीं चल सकता। मैंने एक मुद्दत तक समाज से अलग रह कर अपनी साधना में जो गलती की है, उसे समझ गया हूँ और यही वजह है कि यह सन्देश दे रहा हूँ। मेरी चेतना का तकाज़ा है कि मानवता और समाज से लगाव रखना चाहिए और प्रम करना चाहिए। अगर साहित्य मानवता से तादात्म्य स्थापित न कर सका तो वह अपने लक्ष्य और आकाक्षाओ को पाने में विफल रहेगा। यह सत्य मेरे दिल में उस चिराग की तरह रौशन है जिसे कोइ दलील या तर्क-वितर्क बुझा नहा सकता"।

साहित्य और कला सबधी रवीन्द्रनाथ का यह उद्गार उनके प्रौढ चिन्तन का निष्कर्ष है जो अत्यत साफ शब्दों में उनके मतव्य को सामने रखता है।

रूस की नयी अर्थ व्यवस्था के बारे में व लिखते हैं—"वहाँ जो चीज़ मुझ सबसे अच्छी लगी वह है, दौलत के अशिष्ट गर्व का सर्वथा लुप्त हो जाना। अकेले

इसी कारण जनसाधारण में आत्म-सम्मान की चेतना बेरोकटोक बनी है। किसान और मजदूर जैसे दीन हीन वर्ग विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के घमण्ड के भारी बोझ को उतार फेंक, आज सिर उठाकर सीधे खडे हो सके हैं। इससे मुझे जितनी खुशी हुई है उतना ही आश्चर्य भी हुआ है।"

रवीन्द्रनाथ ने कई बार विदेशों का भ्रमण किया। भिन्न समाज और अर्थ-व्यवस्था वाले देशों को करीब से देखा। परन्तु रूस-भ्रमण, और वहाँ की नयी समाज व्यवस्था ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया।

वर्तमान शताब्दी का चौथा दशक मनुष्यता के इतिहास का काला पृष्ठ है। यही वह कालखंड है जब अंध राष्ट्रवाद, फासीवाद, साम्राज्यवाद और तानाशाही का घिनौना रूप उभर कर सामने आया। युद्धोन्मादी युरोप संस्कृति और नैतिकता के मूल्यों को ताक पर रख कर अपने बर्बर रूप में सामने आ गया था। हिटलर जर्मन नस्ल की श्रेष्ठता पूरे विश्व पर कायम करना चाहता था। मुसोलिनी रोमन-सम्राटों के चरण-चिन्ह पर चलने को उद्यत था। मनुष्यता के इतिहास का यह घोर अंधकारमय अध्याय था। रवीन्द्रनाथ विश्व की इन परिस्थितियों से बेहद उदास और खिन्न थे। उन्होंने अत्यंत तीव्र और रोष भरे शब्दों में साम्राज्यवाद और फासीवाद का विरोध किया। वे निराश होकर भी भीतर से टूटे नहीं थे। मनुष्य, उसके विवेक और मनुष्यता में उनकी गहरी आस्था थी। वे सच्चे अर्थों में मानवतावादी थे। निम्न पंक्तियों में मनुष्य के प्रति उनकी अडिग आस्था और मानवता में उनका अडिग विश्वास झलकता है—"जब मैं चारों ओर दृष्टि डालता हूँ तो मुझे इभी सभ्यता के जीर्ण खण्डहर बेकार ढेर की तरह बिखर दीखते हैं। फिर भी मैं मनुष्य में आस्था खोने का घोर पाप नहीं करूँगा, बल्कि यह आशा करूँगा कि इस प्रलय के बाद और जब वातावरण सेवा तथा त्याग की भावना से स्वच्छ हो जायगा तो उसके इतिहास का एक नया अध्याय खुलेगा"।

साम्राज्यवाद शोषण युद्ध और घृणा पर आधारित समाज व्यवस्था के विरुद्ध रवीन्द्रनाथ का साहित्य मानव प्रेम विश्व बंधुत्व, मानवीय एकता स्वाधीनता और समानता का सन्देश देता है। यही उनके साहित्य की प्रासंगिकता है। *

काव्याञ्जलि

कवि-प्रणाम



सूरज की किरण-किरण बाँट रही है इनाम
कविता ने टाँक लिया जूडे में एक नाम
बेला के फूलों से हल्दिया हथेली पर—
गीताजंलि लिखती है नन्हा-सा कवि प्रणाम ❀

छविनाथ मिश्र

गीताजंलि की प्रतीक्षा



मेरी शताब्दी के सूर्य
तुम्हारे जन्म दिन का गीत
गाती है, आज भी काल वैशाखी—
साक्षी ह जवा कुसुम और लाल कनेर की पंखुड़ियाँ
जिन पर हर साल लिख जाती है एक नया आग्रह
जब कभी दिशाओ को चीरती—
तुम्हारी जैसी कोइ कवि मूर्ति उभरती है
तब कविता कुछ और निखरती है

आततायी अँधेरा उदास हो जाता है
रोशनी जीवन निखेरती है
हवा खशबू बाँटती है—
और एक कविता की सुबह से
एक अकविता की सुबह तक

ध्रुवदेव मित्र पाधाप

पचान्द्र रवीन्द्र के प्रति



रवीन्द्रनाथ



रवीन्द्रनाथ
जन्म दिन पर करता हूँ तुम्हारा आह्वान
आओ जहाँ भी हो उतरो भू पर
रच दो एक नया गान।

नही है कही अजस्रधारा आनन्द की भुवन में
नही है शीतलता
मची है जहाँ-तहाँ त्राहि-त्राहि
नीचा दिखाने की होड़
हिंसा, तोड़ फोड़।

एक बार आओ न
शस्य श्यामला धरती पर
देखो, वह हो गयी है रक्तवर्णा
और उस पर रहने वाले
आदमी का रक्त पड़ गया है ठण्डा।

रवीन्द्रनाथ, आओ न एक बार
और अपने गीतों का नया भाष्य रचते जाओ
आदमी ने सीख लिया है अपने चलना

और जो भी दे उसका साथ
उन्हीं को नाग बन डँसना ।

सत्ता और स्वार्थ
जब हो जाते हैं एकार्थ
तब कितना विषैला हो जाता है दूध
माताओं के स्तनों का
जिनका पान कर रक्तबीज पीढ़ी पनपती है
दिए की लौ भी तब अपने तक सिमटती है ।

रवीन्द्रनाथ
आओ न एक बार
जहाँ भी हो, उतरो इस भूतल पर
देखो, बुद्धिजीवियों का तांडव नाच
पुरस्कार, प्रलोभन व प्रभुपद संगीत पर ।

कविता महसूस करने लगी है अनाथ
प्यारे रवीन्द्रनाथ
चितेरे रवीन्द्रनाथ
एक बार आकर
इस जन-मन का चित्रांकन कर जाओ

आओ
साहस कर, पाँव रख
इस भारत भूमि पर आओ
कर रहा हूँ तुम्हारा आह्वान
रच सको
तो रच दो एक नया गान ।

रवीन्द्रनाथ
आओ
किसी की भी कलम की नोक पर
बैठकर गाओ । ●

नीलम श्रीवास्तव

कवि गुरु रवीन्द्रनाथ—एक स्मरण



मैंने तुम्हें जब भी देखा—
पूरे प्रकाश वृत्त में देखा,
मैंने तुम्हें जितना जाना

मनुष्य की सौन्दर्य चेतना की
सुगन्ध में जाना,
तुम स्याह सतह वाले सरोवर में
एक किरन-फूल जैसे थे जिसकी नाल
कहीं बहुत गहरे
अमृत-स्रोत से जुड़ी थी

कलाएँ तुम्हारे अस्तित्व की पूजा थीं
और प्रतिबिम्ब भी
तुमने अनुभूतियों को शब्दों के हीरामन-पंख दिए
तुमने धरती की महिमा को
संवेदना की बाँसुरी पर गाया
तुमने मनुष्य के भीतर के ब्रह्मांड को जगाया
उसके सिर की उच्चता की कामना की तुमने
उसकी अशेष सम्भावनाओं की वन्दना की तुमने

तुम्हारा भावलोक एक सुदीर्घ इन्द्रधनुष
की तरह पूर्व से पश्चिम तक तना था
जिसमें विभिन्न संस्कृतियों के कालातीत रंग थे
जिसका मर्म
अभेद्य मनुजत्व की गरिमा से रँगा था

तुमने जय पराजय, हर्ष शोक व इतिहास से
गुज़र कर इस देश की
अटूट जीवन्तता को देखा था
अपने विश्वासों, आशाओं-आकांक्षाओं को
कलाओं की सुगठित देह पर उकेरा था
तुम्हारा मन रूपपीठ का तपस्वी ऋषि
एक नई भोर का चितेरा था।

मनमोहन ठाकौर

नमस्कार ग्रहण करो, ओ द्रष्टा



कितनी गौरवशाली परम्परा को
वहन कर रहे थे तुम,
वाल्मीकि, वेदव्यास,
कालिदास, तुलसीदास ।
जलियाँ वाला में जब जालिम अंग्रेज़ों ने
हज़ारों क्रौञ्च पक्षियों का
एक साथ कर डाला वध
तुम्हारे करुणार्द्र अन्तस से भी
निस्सृत हो उठा था एक
अनुपम अनुष्टुप छन्द ।

धरती पर दूसरा रावण जब
आया था हिटलर बन,
तुमने नोगूची के माध्यम से
दिया था धिक्कार स्वर ।

मानव की उच्चतम स्थिति के ओ गायक,
स्वतत्रता स्वर्ग में उन्नत शिर
भारत के जगने की दमित आकांक्षा को
सर्वप्रथम वाणी देने वाले कवि,
अंतर के नमस्कार ग्रहण करो ओ द्रष्टा ।

भारतीय वाङ्मय को गरिमा प्रदान कर
गाये अजस्र गान शान्ति के,
स्वप्न देखा तुमने, समस्त भूमण्डल को
शान्ति निकेतन में परिवर्तित करने का ।
किन्तु आज युद्ध के दमामे जब बज उठे
मुट्ठी भर मानव-शत्रु,
धरती को राख बना देने का
घृणित षड्यन्त्र जब रच रहे,
हमें बहुत आते हो याद गुरुदेव तुम ।

एक मात्र तुम ही गा सकते थे—
"करता नहीं प्रार्थना, विपत्ति में रक्षा करो,
बल्कि वर दो ऐसा, डर न लगे, मेरे प्रभु
भीषण आपत्ति से, विपत्ति से।"

दासत्व-काल में तुमने हमें अस्मिता दी
भयरहित होना सिखलाया था हम को,
विश्व ने जाना था भारत का गौरव फिर
पढ़ कर गीतांजलि को ।

आज फिर तुम्हारे स्मृति-सूत्र में
गुँथ कर हम तुम्हारे ही अनुगामी,
बन जाएँ भिन्न-भिन्न रंगों के फूलों की
माला जिसकी सुगन्धि, दसों दिशाओं में जा बिखरे,
म नपना ल्गि दरग पर इठला गर
धारण कर यश दर मदमन ।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रति



नमन है तुमको बारंबार
कल्पना के वरिष्ठतम फूल
भारती की वीणा साकार।
नमन है तुमको बारंबार॥

दीखते नाना भाषा भेद
रहन की रीति, रग, परिधान।
फूटती अन्तर में अविच्छिन्न
तरल सी एक करुण रस-धार।
तुम्हारा ही चिंतित उद्‌गार।
नमन है तुमको बारंबार ॥

भ्रमण कर तुमने देश-विदेश
दिए मानवता के संदेश।
मिला पश्चिम-पूरब के रग
बना अनुपम रचना-संसार।
स्तम्भित चकित विश्व साभार
नमन है तुमको बारंबार ॥

बन्दिनी माँ के प्रतिभा सूर्य
बजाकर आर्य संस्कृति तूर्य
विश्व से लिया प्रथम स्थान।
खिला नवयुग का स्वर्ण विहान।
हुआ गत गौरव का उद्धार।
नमन है तुमको बारबार ॥

तुम्हारी एक विधा तो नहीं
कहाँ, बोलें हम, तुम हो नहीं।
तुम्हारा पाकर पावन परस
हुआ हर कला अधम को हर्ष।
रहेगा युग युग तक जयकार।
नमन है तुम को बारंबार ॥

विश्रान्त वशिष्ठ

कवि गुरु के प्रति



कवि कुल में कवि बहुत हुए हैं
तुम क्या उनमें बहुत बड़े हो
फिर क्या कारण है तुम कविगुरु
सब से बिल्कुल अलग खड़े हो

केवल कविता नहीं सुनाई
जन-गण के सँग राग मिलाया
विद्या कौन-सी तुमने छोड़ी
जिसको आगे नहीं बढ़ाया

जीवन सारा तुमने अपना
किया सृजन को अर्पित पल पल
बच्चों से बूढ़ों तक पूरी—
पीढ़ी को दे साहस-सम्बल

गीता की अंजलि में तुमने
दुनिया भर के फूल सजाए
दे अपना संगीत विश्व को
प्रेम, शान्ति के स्वर गमकाए ●

कवि प्रणाम



रूप-सिन्धु में डुबकी लेकर
अन्तरतम का रत्न महान
लाये थे तुम धरती तल पर
विश्व चेतना का वरदान।

मानव मानव की अभिन्नता का
फैलाया मंगल प्रकाश
पतित उपेक्षित जन के आहत
मन में जागी नूतन आश।

प्रकृति सुन्दरी की मुद्राएँ
मथतीं तेरे व्याकुल प्राण
राशि राशि सौन्दर्य, तरंगों में
उठ उठ कर गाता गान।

भावों को दी नयी भंगिमा
भाषा को सम्यालंकार
कविवर, तूने किया प्रेम से
कविता रानी का शृंगार।

विविध वृन्त प्रस्फुटित पुष्प ज्यों
रच दीं कितनी उर्वशियाँ
तेरी कलम नोक पर नाचीं
रूप गर्विता अप्सरियाँ।

प्रियतम आते, तुम्हें नींद में
देख, लौटते छोड निशान,
मर्म व्यथा यो दे उकसाते
वे तेरे रचना के प्राण।

जीव जगत क्या, जड प्रस्तर तक की
तुम सुनते करुण पुकार
रखाओ में भरा रग तो
प्रकट हुए अदभुत आकार।

भावा के अनुकूल स्वरो से
गीतो को दी नयी उडान
स्वर शिल्पी, सगीत जगत को
तेरा यह अमूल्य अवदान।

देने को आकार कल्पना को,
तत्पर तुम हे कर्मण्य,
विविध विधाएँ हुई, परस पा
तेरे प्रातिभ कर का, धन्य।

तेरे प्राणा में गूँजी थी
मोहन की मुरली की तान
कभी व्यथा के कभी हर्ष के
स्वर सुनते थे तेरे कान।

तूने किया मनीषी, जग में
भारत का गौरव विस्तार
उपनिषदा को तूने गाया
युग वाणी में विविध प्रकार।

तेरा चित्त बना था जग में
प्राणि मात्र का तीरथ धाम
श्रद्धा से अवनत हम करते
कविमनीषी तुम्हें प्रणाम। *

श्याम सुन्दर बगड़िया

विश्व कवि रवीन्द्र के प्रति



साहित्य उद्यान के ज्ञान वृक्ष !
तुम्हारी डालियों पर जब तब
अनगिन पक्षी बसेरा करते रहे—
कुछ तुम्हारी पत्तियां, टहनियां पर बैठकर
तुम्हारे स्पर्श सानिध्य में
केवल चहकते रहे, डोलते रहे—
दिव्य संवेदन वायु के घात, प्रतिघात जनित
तुम्हारा नाद, छंद, संगीत,
सुनते रहे, झूमते रहे—
तुम्हारी थिरकन, भंगिमा, चित्राकृति
देखते रहे, थिरकते रहे।
किंतु कुछ लगनशील अपनी नन्हीं नन्हीं चोंचों में,
तुम्हारे फूल, पत्ते—
अपनी नन्हीं नन्हीं सांसों में,
तुम्हारा सुवास, सौरभ—

जो कुछ भर सके,
जो कुछ पा सके,
भरकर, पाकर उड गये ।
उनमे अपने अपने नीड को बनाया, सजाया—
अपने अपने नीड को महकाया, भरमाया ।
एक बोधि वृक्ष के तले
कभी एक हताश गौतम बैठा था
और बुद्ध बन गया ।
सुना नही उसके बाद
फिर कोइ दूसरा गौतम
उसके तले बैठकर बुद्ध बना हो ।
किंतु हे बोधि वृक्ष !
शाति निकेतन की पुण्य स्थली में,
तुम्हारी
शाखा-उपशाखाए,
हो गइ हैं
अमर वलि, शाश्वत, कालातीत,
विराट, विशाल विस्तृत
काव्य-नाट्य-नृत्य
शिल्प-सगीत कला
और न जाने कितने कितने रूप आकारों में ।
तुम्हारी छाया तले बैठकर

अधकार मे भटकते,
निराश, दिग्भ्रम
साहित्य-सगीत कला पिपासु
न जाने कितने
गौतम
बुद्ध हो गये,
बुद्ध हो रहे
और होते रहेगे
अनन्त काल तक । *

सुकीर्ति गुप्ता

विश्व कवि के प्रति



सत्य शिव सुन्दर के
काव्य शिल्पी !
शुभ स्वर दो—
[illegible] गा गए तुम्हारे गीत

भौतिक सुख-धारा में तैरते रहकर भी
तुमने सँजो ली
निस्संग कमल की सारी सुषमा
जीवन की गति, ताल, लय, गरिमा
सब तुम्हारे छन्दों के प्राण
प्रकृति के स्पन्दनों को
जन जन की धड़कनों को
अपने शब्दों में समोने वाले ओ कवि।
मनुजता की जड़ बहुत गहरे
धरती में रोप दीं तुमने,
अंदर ही अंदर

अफ्रीका के महावृक्ष की
काली जड़ों से जुड़ती
सह अनुभूति के उजाले में फैलती
हृदय की ललक बनकर
मुक्तिकामी शिराएँ तन गइं
लाल-लाल प्रतीक-बिम्ब मुक्ति-धारा में बहते-बहते
बांग्ला देश के मुक्ति-योद्धाओं के सीने में
आज़ादी के अंगारे बन गए
उनके होठों पर जय-गान के फुहारे बन गए
हाथों में अझुक पताकाएँ
क्रांति की शलाकाएँ
बन गइं नव संस्कृति की आधार शिलाएँ।
तुम्हारा भाव निर्झर अजस्र काल-कारा को तोड़
उल्लसित उन्मक्त मरुत से करता होड़
अतीत को सहेजता, करता है भविष्य का उच्चारण
युद्धों का निवारण
स्वार्थों का संहरण
सत्य का संधारण
सत्य शिव सुन्दर के काव्य शिल्पी,
मुझे स्वर दो।

यहाँ सब खैरियत है



सुनो, रवि ठाकुर,
यहाँ सब ओरियत है
मौसम अब भी लौटता है।
कृष्णचूड़ा
अब भी फूलते हैं,
हवा की अँगुरिया में
अब भी दहकती है
जीने की आग,
आँखों की झील में खिलते हैं
मकरन्द व रक्तकमल।
लेकिन शहर के मातमी चहरे पर,

कहा, कोइ फर्क नहीं आता।
हमारी ठंडी नसों में जागता है,
न कोई उमंग, न वसन्त।
अब बदल चुके हैं
ज़माने के राग-रंग।
वो जिसे तुम कृष्णकली कहते थे
दौलत के सोनवर्णी हिरणों के लोभ में,
अपने बदन के खेमे में

नाजायज धन्धा चलाती है।
वो जिसे तुम मनु-पुत्र कहते थे
अब, रक्षक के बजाय
भक्षक की भूमिका निभाते हैं,
अपनी गरज में अन्धे ये आदमखोर,
बच्चों तक के निवाले छीन ले जाते हैं,
प्यार के बजाय
फरेब की पदावली गाते हैं।
तुम खुश हो न, रवि ठाकुर,
कि दुनिया ने तुम्हें भुलाया नहीं?
लेकिन, सच कहना
तुम्हारे विश्वासों को झुठलाते हुए,
क्षमा, दया, शान्ति की खिल्ली उड़ाते हुए,
इन्सानियत के नाम पर
दरिन्दगी का जश्न मनाते हुए
तुम्हें याद करने के नाटक ने,
तुम्हें रुलाया नहीं?
गनीमत है, रवि ठाकुर,
तुमने यह कुछ नहीं देखा,
वर्ना सुखी होने के बजाय
दुःखी होते
अपने सम्मान में आयोजित जश्न में,
हरगिज शरीक नहीं होते। *

कवीन्द्र
रवीन्द्र
की
कुछ
रचनाओं
का अनुवाद

मूल शाजाहान
अनुवाद डॉ० घनश्याम अस्थाना

ताजमहल

●

यह बात तुम्हें थी ज्ञात,
हिन्दपति शाहजहाँ,
काल के स्रोत में चिरविलीन हो जाते हैं
जीवन, यौवन, सम्पत्ति, मान,
थी यही साध, सम्राट, तुम्हारे प्राणों की
केवल तव अन्तर्व्यथा चिरंतन बनी रहे।

वज्र सम कठिन यह राजशक्ति
रक्ताभ साध्यवेला सम तन्द्रालय हो,
या हो जाय लीन ,
थी यही आश मनमें
केवल तव दीर्घश्वास
उच्छ्वसित निरंतर हो नभ को सकरुण कर दे।
हीरा-मुक्ता-माणिक शोभा
सब हों विलुप्त यदि होना है,
ज्यों शून्य व्योम के
इन्द्रजालमय इन्द्रधनुष की शुभ्र छटा ,
बस रहे शेष
नयनों के जल का एक बिन्दु
काल के गाल के ऊपर शुभ्र समुज्ज्वल-सा
यह ताजमहल।

हा-हा रे मानव हृदय ।
समय ही नहीं तुम्हारे पास
कि बारम्बार किसी को देख सको
तुम मुड़-मुड़ कर !
यह असंभाव्य ।

जगके हर तट पर होकर ही
जीवन की तीव्र धार में सदा बह हो तुम !
ज्यों एक हाट से ले बोझा
फिर कर रहे हो रिक्त दूसरी हाटों में ।

दक्षिण के मन्त्र गुंजरण में
तव मधुवनमें
है बासंती माधवी मंजरी भर देती
जिस क्षण चंचल मालचांचल
(फिर उसी समय)
गोधूलि विदा की आकर बिखरा जाती है
धूल में छिन्न पाँखुरियों को
बिल्कुल तो है अवकाश नहीं !

फिर
शिशिरनिशामें करते हो
प्रस्फुटित निकुंजों में तुम नूतन कुन्दराजि
हेमन्तराज के अश्रुसिक्त
आनन्दराज की होली एक सजाने को !

हा हृदय !
तुम्हारा यह संचय
निशिदिन चेतन पथ प्रान्तों में फेंका जाता !
है नहीं तनिक अवकाश,
तनिक भी नहीं समय !

गद्गद्,
इसी कारणवश तव शंकित मन में

सौन्दर्य मुग्ध कर हरना चाहा
    समय हृदय।
डालकर कौन सी जयमाला तवकण्ठ मध्य
    इस रूपहीन मृत्यु को
    अमर, अपरूप साज में वरण किया?

था नहीं क्योंकि अवकाश
    तुम्हारे पास—
    बारहों मास विलाप किया करते,
    इसलिये
    चिरन्तन मौनजाल से बाँध लिया
    अपने अशान्त क्रन्दन को
    कठिन बन्धनों में।

ज्योत्स्नामयी निशि के यामों में
निज प्रेयसि को जिस सम्बोधन से तुम पुकारते
हौले-से,

चुपके से उसे बुलाने को
उसे इसी जगह
तुम चले गये रखकर अनन्त के कानों में।

खिल उठी तभी
प्रेम की करुण कोमलता सी
सौन्दर्य पुष्प पुञ्ज, प्रशान्त पाषाणों में।

सम्राट् कवे!
है यही तुम्हारी हृदयच्छवि,
है यह तव नूतन मेघदूत
अद्भुत अपूर्व छन्द में,
गान में,

उस अलक्ष्य की ओर निरन्तर उठता है—
है जहाँ तुम्हारी विरहिणि प्रेयसि छिपी हुई

भोर के अरुण आभासों में
मलिना संध्याम्बर के सकरुण विश्वासों में,
पूनम निशि की अपरूप चमेली के लावण्य विलासों में।
उन भाषातीत सुदूर तटों में
जहाँ पहुँच कर
लौट लौट आते हार, कंगाल नयन।

युग युग में तव सौन्दर्य दूत
काल के पहरुए में रच कर
है चला आ रहा देता यह सन्देश मौन—
कैसे भूलूँ,
कैसे भूलूँ
प्रियतमे।
तुम्हें कैसे भूलूँ?

हे महाराज!
तुम चले गये हो आज!
तुम्हारा राज्य
स्वप्न सम भंग हुआ,
है ध्वस्त हो गया सिंहासन

तव सैन्य शक्ति—
जिसके पदभार तले धरती,
करती डगमग
उसकी स्मृति आज वायु में भर
दिल्ली के पथ की धूल बनी
उड़ती फिरती।

जयघोष जहाँ करते थे,
अब वन्दी चारण,
[illegible] स्वर से अब
गौरव [illegible] तार,

तब पुरसुन्दरियों के नूपुर की रुनझुन धुन
अब ध्वस्तमहल के कोनों में
झिल्ली की झंकारों में होकर मृत्युलीन
है रुला रही, रे, नैशगगन।

फिर भी
यह अमलिन दूत तुम्हारा भ्रान्तिहीन,
चिर क्लान्तिमुक्त
कर तुच्छ राज्य निर्माण-नाश
कर तुच्छ मृत्यु जीवन का
आरोहावरोह,

युग-युग से
यही एकस्वर से
चिर विरही की वाणी में कहता आया है—
कैसे भूलूँ,
कैसे भूलूँ
प्रियतमे।
तुम्हें कैसे भूलूँ?

सब मिथ्या है।
है कौन कि जो यह कहता है—
तुम नहीं भूल पाये हो,
भूल न पाओगे?

है कौन कि जो कहता है—
तुमने नहीं खोल कर डाल दिये—
स्मृति के पिंजरे के द्वार अरे।
क्या बाँध आज भी रक्खा है
तुमने अतीत का अन्ततिमिर
निज प्राणों में?
क्या नहीं मुक्तिपथ से विस्मृति के

अब तक भी
वह नहीं आ सका है बाहर !

यह कैसा है अद्भुत, उद्धत]
समाधि-मन्दिर
एक ही जगह
आज तक चिर स्थिर बना हुआ,

धरती की रज में रह कर भी
आवरण स्मरण का दे इसने
ढँक रक्खा बड़े जतन से निज में मरण मौन !

है कौन बाँध पाया जीवन !
अम्बर का प्रति नक्षत्र बुलाता है उसको,
है लोक लोक में,
ज्योति ज्योति में
नव-नव पूर्वांचल में उसका आमंत्रण !

तोड़ कर स्मरण की ग्रंथि
विश्वपथ पर होकर बन्धन विहीन
वह चला जा रहा द्रुत गति से ।

हे महाराज !
कोई भी महाराज्य तुमको
है नहीं कभी भी पकड़ सका

हे चिर-विराट !
यह सागर मयी पृथ्वी तुमको भर नहीं सकी—
तुम इसीलिए—
इसरा दुसरा घर चले गये—
मृत पात्र सदृश
होने पर शेष जीवनोत्सव !

तुम चिर पथ के भी हो महान,

इसलिए तुम्हारा यह जीवन रथ बार-बार
पीछे तन-कीर्ति छोड़कर चलता जाता है ।

इसलिए—
नहीं तुम यहाँ,
चिन्ह हैं निज तुम्हारे वर्तमान ।

जो प्रेम प्रगति करना ही नहीं जानता था
जिसने पथ रोक बिछाया अपना सिंहासन,
उसका विलास संभाषण
पथ की धूल बना
है लिपटा पड़ा तुम्हारे दोनों चरणों में
तुम इसी धूलि को नाप गये फिर वही प्रेम ।

कुछ गीत
रूपान्तर प० छविनाथ मिश्र

मूल आनन्दधारा बहिछे भुवने



बह रही आनन्दधारा भर भुवन
अमृत रस निशिदिन छलकते प्राणमय उज्ज्वल गगन ।

पान करते चाँद सूरज नित्य निर्भय
दीप्त रहती है सदा यह ज्योति अक्षय
किरण पी पी कर धरा का हरा लहरा भरा जीवन ।
क्या यहाँ बैठे स्वयं खोए हुए
स्वार्थ में यों डूबने का भला क्या कारन अकारन ।

क्षुद्र दुख को तुच्छ समझो
मुक्त मन से जागो-जूझो
प्रेम से भर लो हुलस कर शून्य जीवन, हृदय आँगन ॥

ओ रे भीरू तोमार हाते नाइ भुवनेर भार

●

अरे ! भीरु तेरे हाथों में नहा भुवन का भार
कर्णधार पतवार सहजे, वही करेगा नैया पार ।

तुम को क्या लेना देना तूफान, उठे यदि नित अविराम
चुप चुप देख खेल लहरों का चिन्ता का क्या काम
आने भी दो गहन रात को, होने दो अँधियार ।
कर्णधार पतवार

देख एकटक पश्चिम में तू मेघढँका पूरा आकाश
देख मगन मन पूर्व दिशामें तारक शोभा दीप्त प्रकाश
अपने जितने सगी साथी जो भी सगे तुम्हारे
उनकी रक्षा कर लोगे क्या अपनी गोद पसारे
झड झझा से दिल दहलेगा, जाग उठेगा हाहाकार ।
कर्णधार पतवार

मूल पद पश्चाताप घेरे रागिम मुक्ति तारे पैनेद हुये



इतनी बात मान ले प्यारे! मुक्ति तुझे तो पाना ही है
पथ अन्त की ओर गया जो उस पर तुझको जाना ही है

गुरु मठ मे गाते-गाते नाथ चालू हो निर्भय मन स
त्यश होकर इस मैं तुझको लहर पार स ना ही है।
भँवर अगर तुमको भरमाए, छुटकारा तो पाना ही है
यात्रा-पथ पर कोट अर्नगत, --र रादसर जाना ही है

सुख की आशा को तुम छोड़ो, ... मन प्राण गँवाए।
जीवन हो परिपूर्ण ... मार पान की पाना ही है।

मूल प्रथम आदि तव शक्ति



आदि शक्ति तुम, प्रथम ज्योति तुम
परमोज्ज्वला ज्योति तेरी ही
तैर रही है गगन गगन में।

नित्य प्रवाहित तेरी वाणी, तेरा ही आनन्द विलास
जाग रही नित नव-नव रस बन
हृदय हृदय, आँगन मन मन में।

तेरे चिदाकाश में भासित सूरज चाँद सितारे
प्राण तरंगें उठें पवन में।
तुम्हीं आदि कवि तुम ही कविगुरु
गूँज रहा है मन्त्र तुम्हारा
छन्द छन्द में भुवन भुवन में॥

मूल   जीवन यखन शुकाये जाय करुणा धाराय एसो
●

जीवन जब नीरस हो जाए करुणाधारा बनकर आओ
चुक जाये माधुरी तभी तुम गीत सुधारस बनकर आओ।

जब हो जाए कर्म प्रबलतर, ढँक जाए जब दिशा दिशान्तर
हृदय प्रान्त में हे जीवन धन! धीरे धीरे चरण धर आओ।

दीन हीन जब मन हो जाए, स्वार्थ सिमट कर कोने में सो जाए
हे उदार तब द्वार खोलकर [illegible] बनकर आओ।

जब वासना बवण्डर बनकर मन दृष्टि को ढाँपे निरन्तर
हे पवित्र तुम हे अतन्द्र तुम रुद्र तेज तब बनकर आओ।

मूल पारवि ना कि जोग दिते एइ छन्दे रे



याग ले सकोगे क्या तुम इस छन्द में
ढहने-बहने और तोडने के ही इस आनन्द में ॥

कान लगाकर सुनले प्यारे, दिशा-दिशा में गगन मझारे
मरणवीण पर क्या सुर बजता, सूरज तारे चन्द्र में—
आग जला दौडते हुए इस जलने के आनन्द में

पागल करनेवाली धुन सुन पता न पाए कहाँ रात-दिन
पीछे मुडकर नहीं निहारे, रहे न बन्धन बन्ध में—
गिरते पडते दौड भागकर चलने के आनन्द में

वे आनन्द चरण जब पडते, छह ऋतुओ के नृत्य गमकते
उच्छल धरती मुखरित, रग-रग में गीत-गन्ध में—
सब कुछ छोड-फेंक देने के मधुर मरण आनन्द में ॥

मूल हे मोर चित्त पुण्य तीर्थे जागो रे धीरे



पुण्य तीर्थ बना मे जागो, हे मेरे मन धीरे
इस भारत के महामानवी सुपरित सागर तीर ॥

परमानन्द उदार छन्दमय वन्दन उन्हें निवेदित
नदिया की जपमाला नेकर
ध्यान मग्न ये पर्वत प्रान्तर
लगा यहाँ तुम नित्य नवीना परम पवित्र धरित्री रे

पता नहा किसका आवाहन, कितनी-कितनी जनधारा
स्रोत अगाध यहाँ से आया लहरा जन-समुद्र न्यारा,
आर्य अनार्य यहाँ जो जितने आए जन जो द्राविड चीन
मुग़ल पठान हूण-शक दल गल एक देह में विलसित लीन

आज खुला पश्चिम का द्वार
सब लाते नित नव उपहार
लेना-देना मिलना जुलना होगा हरदम घडी घनी रे

आओ तुम हे आर्य-अनार्य हिन्दू तुम या मुसलमान
आओ-आओ तुम अँगरेज आओ आओ तुम ख्रीष्टान
आओ ब्राह्मण शुद्ध करो मन सब का हाथ थाम लो बढ़कर
आओ पतित परिगणित उतरे भार अनादर का जो सर पर
करना है माँ का अभिषेक
मगलघट भरना है शेष

सब का पावन परस सहेजे उस पवित्र तीरथ नीरे
आज देश के महामानवी सुखरित सागर तीरे ॥ ५